'वेदसाम्य-वैषम्य'

श्रीमान् प्रो० हीरालालजी की सेवा में—

सप्रणाम निवेदन ! आज मैंने 'सिद्धान्त-समीक्षा' पूरी कर ली। अभी जितना संभव था उतनी ही एकाग्रता से सुनता रहा। यत्र तत्र प्रश्न विचार और समालोचक भाव उठता था अतः चिह्न भी करता गया; पर उन उठे हुए प्रश्नों, विचारों और समालोचक भावों को पुनः संकलित करके लिखने मेरे लिए संभव नहीं। उसमें जो समय और शक्ति आवश्यक है वह यदि मिल भी जाय तथापि उसका उपयोग करने का अभी तो कोई उत्साह नहीं है। और खास बात तो यह है कि मेरा मन मुख्यतया अब मानवता के उत्कर्ष का ही विचार करता है।

तो भी समीक्षा के बारे में मेरे मन पर पड़ी हुई छाप को संक्षेप में लिख देना इसलिए जरूरी है कि मैं आपके आग्रह को मान चुका हूँ। सामान्यतयाः आप और पं० फूलचन्दजी दोनों ऐसे समकक्ष विचारक जान पड़ते हैं जिनका चर्चायोग विरल और पुण्यलभ्य कहा जा सकता है। जितनी गहरी, मर्मस्पर्शी और परिश्रमसाध्य चर्चा आप दोनों ने की है वह एक खासा शास्त्र ही बन गया है। इस चर्चा में एक ओर पंडित मानस दूसरी ओर प्रोफेसर मानस—ये दोनों परस्पर विरुद्ध कक्षा वाले होने पर भी प्रायः समत्व, शिष्टता, और आधुनिकता की भूमिका के ऊपर काम करते हुए देखे जाते हैं। जैसा कि बहुत कम अन्यत्र संभव है। इसलिए वह चर्चा शास्त्रपद को प्राप्त हुई है। आगे जब कभी कोई विचार करेगा तब इसे अनिवार्य रूप से देखना ही पड़ेगा। इतना इस चर्चा का तात्त्विक और ऐतिहासिक महत्व मुझको स्पष्ट मालूम होता है।

यद्यपि मैं सब पण्डितों को नहीं जानता तथापि जितनों को जानता हूँ उनकी अपेक्षा से कहा जा सकता है कि इस विषय में पं० फूलचन्दजी का स्थान अन्यों से ऊँचा है। दूसरे ग्रंथपाठी होंगे पर इतने अधिक अर्थस्पर्शी शायद ही हों। कितना अच्छा होता यदि ऐसे पण्डित को कोई अच्छा पद, अच्छा स्थान देकर काम लिया जाता। यदि ऐसे पण्डित को पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ पूरा अर्थसाधन दिया जाय तो बहुत कुछ शास्त्रीय प्रगति हो सकती है। अभी तो अर्थप्रधान पण्डित और गृहस्थ ऐसे सुयोग्य पण्डितों को अयोग्य रूप से निचोड़ते हैं। मेरा वश चले तो मैं ऐसों का स्थान बहुत स्वाधीन कर दूँ। अस्तु यह तो प्रासङ्गिक बात हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं आपको लिखता हूँ और आपके बारे में कुछ लिखूँ तो कोई शायद चाटु वाक्य समझे; पर मैं तो कभी चाटुकार नहीं और बदप्रकृति भी नहीं। इसलिए जैसा समझता हूँ लिख देता हूँ। जैनेतर विद्वानों में तो कर्मशास्त्र विषयक गहरे ज्ञान की अपेक्षा ही नहीं रखी जा सकती; पर जैन और उनमें भी प्रोफेसर में ऐसे गहरे ज्ञान को ढूँढ़ना निराश होना है जितना आपके लेखों में व्यक्त होता है। निःसंदेह आपने कर्मतत्त्व का आकण्ठ पान ही नहीं मनन भी किया जान पड़ता है। अन्यथा पं० फूलचंदजी के शास्त्रीय और सोपपत्तिक लेखों का जवाब देना और सो भी अत्यन्त गहराई और पृथक्करण के साथ संभव नहीं। स्थिति ऐसी जान पड़ती है कि कर्मशास्त्र विषयक जितना पाण्डित्य पण्डित में हो उतना ही विशद पाण्डित्य एक प्रोफेसर के लेख व्यक्त करते हैं।

दोनों की विचार सरणियाँ और दलीलें देखता हूँ तो यह निश्चयपूर्वक अन्तिमरूप से कहना तो अभी कठिन है कि कौन एक विशेष ग्राह्य है? खास करके जब यह चर्चा एक या दूसरे रूप से साम्प्रदायिकता के साथ जुड़ जाती है तब मौन ही अच्छा जान पड़ता है। तो भी तटस्थभाव से देखने पर मुझे अपने विचार में परिवर्तन करना पड़ा है जो मैंने कर्म ग्रन्थ के एक परिशिष्ट में लिखे हैं। मुझको जान पड़ता है कि आपकी विचार सरणी वस्तुगामिनी है चाहे जितने शाब्दिक प्रमाण विरोधी क्यों न हों। मैं किसी शास्त्रवाक्य का वैसा कायल नहीं जैसा वस्तुतत्त्व का। हजारों के द्वारा सर्वथा प्रमाण भूत माने जाने वाले वाक्यों और शास्त्रों को मैं क्षणभर में छोड़ सकता हूँ यदि उनसे मेरी बुद्धि और तर्क को संतोष न हो। पर आपने तो तर्क और बुद्धि स्वातन्त्र्य के अलावा शास्त्रीय प्रमाण भी दिये हैं जो बहुत महत्त्व के हैं। इस दृष्टि से मेरे पर आपकी विचारसरणी का असर ही मुख्य पड़ा है।

जो मैंने अल्प स्वल्प कर्मशास्त्र विषयक चिंतन मनन किया है, जो मुझ में दूसरी सहायक अल्प स्वल्प दार्शनिक शक्तियाँ हैं, उन सबको यदि मैं एकाग्र करूँ और उसमें अपना असाम्प्रदायिक संस्कार मिला कर आप दोनों की प्रत्येक दलील की गहरी छानबीन करूँ तो संभव है मैं पूरा न्याय करके एकतर निर्णय बाँध सकूँ। पर संभव हो तब भी अब इस ओर मेरी रुचि नहीं है। एक तो यह विषय इतना अधिक सम्प्रदायगत हो गया है कि उसे कोई जैनपक्ष तटस्थभाव से कभी नहीं देखेगा। दूसरे यह विषय जीवनस्पर्शी भी नहीं। न तो किसी पुरुष या स्त्री का मोक्ष होना है और न वैसा मोक्ष इष्ट भी है। हम जिस निवृत्तिप्रधान जैन परम्परा को सर्वाङ्गीण और सदा के लिए अभ्रान्त समझते हैं उस परम्परा के मूल में एक या दूसरे कारण से दूसरी परम्पराओं की तरह त्रुटियाँ भ्रान्तियाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और एकदेशीयता भी रह गई है जो तात्त्विक और ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर स्पष्ट मालूम होती हैं। हम जन्म-संस्कार और दृष्टि संकोच के कारण कुछ भी कह और मान नहीं सकते हैं। पर साम्प्रदायिक मोक्ष का स्वरूप और निवृत्ति की कल्पना न केवल अधूरी हैं; किंतु मानवता के उत्कर्ष में आत्मीय सद्‌गुणों के व्यापक विकास में बहुत कुछ बाधक भी है। हमारी चिरकालीन साम्प्रदायिक जड़ता और अकर्मण्यता ने केवल बाह्य खोखे में और कल्पनाराशि में जैनत्व बांध रखा है। और जैन प्रस्थान में जो कुछ तत्त्वतः सारभाग है उसे भी ढांक दिया है। खास बात तो यह है कि हमारी निर्मर्याद सोचने की शक्ति ही साम्प्रदायिक जड़ता के कारण मोठी हो गई है। ऐसी स्थिति में एक अव्यवहार्य विषय पर शक्ति खर्च करने का उत्साह कैसे हो? तथापि आपने इस विषय पर जो इतनी एकाग्रता से स्वतन्त्र चिंतन किया है उसका मैं अवश्य कायल हूँ। क्योंकि मेरा मानस विचारपक्षपाती तो है ही। खास कर जब कोई किसी विषय में स्वतन्त्र चिंतन करें तब मेरा आदर और भी बढ़ता है। इसलिए आपकी दलीलों और विचारों ने मेरा पूर्वग्रह छुडाया है।

स्त्री शरीर में पुरुष वासना और पुरुष शरीर में स्त्रीत्वयोग्य वासना के जो किस्से और लक्षण देखे सुने जाते हैं उनका खुलासा दूसरी तरह से हो जाता है जो आपके पक्ष का पोषक है। पर इस नए विचार को यहाँ चित्रित नहीं कर सकता। भोगभूमि में गर्भ में स्त्रीपुरुषयुगल योग्य उपादान हैं और कर्म भूमि में नहीं इत्यादि विचार निरे बालीश हैं। जो अनुभव हमारे प्रत्यक्ष हों, जिन्हें हम देख सकें, जांच सकें, उन पर यदि कर्मशास्त्र के नियम सुघटित हो नहीं सकते और उन्हें घटाने के लिए हमें स्वर्ग, नरक या कल्पित भोगभूमि में जाना पड़े तो अच्छा होगा कि हम उस कर्मशास्त्र को ही छोड़ दें। हमारे मान्य पूर्वजों ने जिस किसी कारण से वैसा विचार किया; पर हम उतने मात्र में बद्ध रह नहीं सकते। हम उनके विचार की भी परीक्षा कर सकते हैं। इसलिए द्रव्य और भाववेद के साम्य के समर्थन में दी गई युक्तियाँ मुझको आकृष्ट करती हैं और जो एक आकृति में विजातीय वेदोदय की कल्पना के पोषक विचार और बाह्य लक्षण देखे जाते हैं उनका खुलासा दूसरी तरह से करने को वे युक्तियाँ बाधित करती हैं। कोई पुरुष स्त्रीत्व की अभिलाषा करे इतने मात्र से स्त्रीवेदानुभवी नहीं हो सकता। गर्भग्रहण-धारण-पोषण की योग्यता ही स्त्रीवेद है न कि मात्र स्त्रीयोग्य भोगाभिलाषा। मैं यदि ऐसा सोचूँ कि कान से देखता तो अन्ध न रहता या ऐसा सोचूँ कि सिर से चलता और दौड़ता तो पङ्गु न रहता तो क्या इतने सोचने मात्र से चक्षुर्ज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम का या पादकर्मेन्द्रिय का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फल मुझ में प्रकट होगा ? जैसे ज्ञानीय क्षयोपशम वस्तुतः एक है तथापि मिथ्यादर्शन आदि के सम्बन्ध से उसके सम्यक् विपर्यास आदि फल विविध होते हैं, वैसे ही वेद एक रहने पर भी और उसका सामान्य कार्यप्रदेश एकरूप होने पर भी अन्य काषायिक बलों से और अन्य संसर्ग से उस वेद के विपरीत लक्षण भी हो सकते हैं। पुरुष वेद के उदयवाला पुरुषलिङ्गी भी स्त्रीत्व योग्य अभिलाषा करे तो उसे स्त्रीवेद का लक्षण नहीं परन्तु पुरुषवेद का विपरीत लक्षण मात्र कहना चाहिए। सफेद को पीला देखने मात्र से नेत्र का क्षयोपशम बदल नहीं जाता। वस्तुतः किसी एक ही वेद में नानाविध अभिलाषा की जननशक्ति मानना चाहिए। चाहे सामान्य नियतरूप उसके अभिलाषा को लोक अमुक ही क्यों न माने। वीर्याधायकशक्ति, विर्यग्रहण शक्ति ये ही क्रम से पुंवेद स्त्रीवेद हैं जो द्रव्याकार से नियत हैं। बकरा दूध देता है तो भी उसे स्त्रीवेद का उदय माना नहीं जा सकता, नियत लक्षण का आगन्तुक कारणवश विपर्यास मात्र है। जैसे सामान्यतः स्त्री को डाढ़ी मूँछ नहीं होते पर किसी को खास होते हैं। यह तो लम्बा हो गया। सारांश इतना ही है कि मुझको वेदसाम्य विचारसंगत जान पड़ता है। पुनश्च

ओप्रेशन के द्वारा एक दृश्य द्रव्यलिङ्ग का अन्य द्रव्यलिङ्ग में परिवर्तन आजकल बहुत देखे सुने जाते हैं। इसे विचारकोटि में लेना होगा। नपुंसक शायद तीसरा स्वतन्त्र वेद ही नहीं। जहाँ अमुक नियत लक्षण नहीं देखे वहाँ नपुंसक स्वतन्त्र वेद मान लिया पर ऐसा क्यों न माना जाय कि वहाँ वेद स्त्री पुरुष में से कोई एक ही है, पर लक्षण विपरीत हो रहे हैं। द्रव्य आकार भी पुरुष या स्त्री का विविध तारतम्य युक्त होता ही है।

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org